chapter-6

अध्याय-6

हिन्दी गद्य साहित्य : अनुवाद के झरोखे से

6.1 फोर्ट विलियम कॉलेज और अनुवाद

6.2 हिन्दी गद्य पर अनुवाद का प्रभाव

- **6.2.1** बंगला साहित्य से अनुवाद
- **6.2.2** गुजराती साहित्य से अनुवाद
- **6.2.3** दक्षिणी भाषाओं से अनुवाद
- **6.2.4** पश्चिमी साहित्य से अनुवाद
- **6.2.5** फ़ारसी और उर्दू साहित्य से अनुवाद

6.3 विविध वाद और अनुवाद

- **6.3.1** छायावाद और अनुवाद
- **6.3.2** प्रगतिवाद और अनुवाद
- **6.3.3** प्रयोगवाद और अनुवाद

अध्याय-6

हिन्दी गद्य साहित्य : अनुवाद के झरोखे से

किसी रसविहीन और महत्वहीन बात के लिए हिन्दी में कहावत है - "यह तो निरा गद्य है !" एक संस्कृत उक्ति है - गद्य, कवियों के लिए कसौटी रूप है । फिर भी भावों की सरल और व्यवस्थित अभिव्यक्ति तो गद्य में ही हो सकती है । हालाँकि हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल में साहित्यकारों और आचार्यों ने विशेषत: कविता अर्थात पद्य पर अधिकाधिक अपनी रूचि दिखाई । इन कालों में गद्य की रचना बहुत कम हुई । जबकि आधुनिक काल में गद्य साहित्य की रचना प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो अपने इतिहास लेखन में आधुनिक काल को 'गद्य-काल' के नाम से अभिहित किया है । हिन्दी साहित्य के सभी आद्य गद्य रूप, कहे जाने के लिए है जैसे 'वार्ता' बताने के लिए ('चौरासी वैष्णव की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' आदि), 'कथा' और 'भाषा टीका' कहने के लिए ('प्रेमसागर', भाषा योग वासिष्ठ आदि), 'कहानी सुनाने के लिए' ('रानी केतकी की कहानी' आदि) अथवा उपदेश देने के लिए ('नासिकेतापाख्यान' आदि) या शास्त्रार्थ या विचार के प्रचार के लिए (बाइबिल के अनुवाद, राजा राममोहनराय के शास्त्रार्थ या स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'वेद-भाष्य' आदि) होते थे ।[1] भाषा का प्राथमिक प्रयोग तो मौखिक रूप ही है । इस रूप पर साहित्यकारों ने अधिक बल दिया और आरंभिक रचनाएँ कविताशैली में गाकर सुनाने हेतु ('पृथ्वीराज राक्षस') अथवा तो वक्ताश्रोता शैली में (रामचरितमानस) सृजित हुई । धीरे-धीरे हिन्दी भाषा अपना रूप-आकार लेकर विकसित होने लगी । हिन्दी भाषा में गद्य रचनाओं का विकास करने में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

6.1 फ़ोर्ट विलियम कॉलेज और अनुवाद :

हिन्दी साहित्य के विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान के लिए फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का नाम स्वर्ण अक्षरों से हिन्दी साहित्य के इतिहास में अंकित है । इस कॉलेज की कहानी ईस्ट इण्डिया कंपनी के कर्मचारियों की कहानी है । ईस्ट इण्डिया कंपनी के कर्मचारियों के लिए ही फ़ोर्ट विलियम

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.11

कॉलेज की स्थापना की गई थी । भारत का दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्र का अधिकांश हिस्सा कंपनी के शासन में आ चुका था । उस समय लॉर्ड वेलेज़ली का शासन चल रहा था । भारतभर में उस समय तक कंपनी का शासन ही एक ऐसा शासन था कि जिसकी टक्कर का और कोई शासन, राज्य या दल नहीं था । कंपनी के उच्च अधिकारी इंग्लैण्ड से आते थे जिनको बोर्ड (कोर्ट) ऑफ़ डिरेक्टर्स स्वयं नियुक्त करके भेजता था । प्रारंभ में शासक वर्ग स्थानीय कर्मचारियों पर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं कर सकता था, इसलिए कंपनी शासन के लिए कनिष्ठ कर्मचारी भी बोर्ड (कोर्ट) ऑफ डिरेक्टर्स के द्वारा नियुक्त करके भेजे जाते थे । क्योंकि कनिष्ठ कर्मचारी भारत की स्थानीय भाषाओं तथा स्थानीय सामाजिक रीति-रिवाजों से अनभिज्ञ होते थे, अत: शासक वर्ग को एक शिक्षा-संस्था की आवश्यकता महसूस हुई और फिर लॉर्ड वेलेजली ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना का कार्य शुरु किया ।[1]

ईस्ट इण्डिया कंपनी के कारण ही पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली । 1756 ई. तक अंग्रेज कंपनी को भारत में अपने अधिकारों तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए छलकपट करना पडा, लालच और ख़ुशामद का मेल करना पड़ा तथा शौर्य का जामा पहनकर सूदखोर की तरह सख्ती से काम लेना पड़ा । इस कंपनी का मुख्य उद्देश्य भारत में आकर ख़ूब धन कमाना था । किसी भी तरह धन कमाकर इंग्लैण्ड को अधिक समृद्ध बनाना ही इस कंपनी का मुख्य हेतु था । अत: उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित करने में कोई कमी नहीं छोड़ी । प्लासी और बंगाल के युद्ध के बाद कंपनी को महत्वपूर्ण राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो गए । और फिर भारत की राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर सत्ता हाँसिल करने के प्रयत्न कंपनी ने आरंभ कर दिए । सौभाग्यवश उसे इस कार्य में सफलता भी मिलती चली गई । इस कंपनी को भले ही अनेकों राजनैतिक आदि सत्ता प्राप्त हुई हों परंतु इस कंपनी के कर्मचारियों का मूल चरित्र तो वही व्यापारी ही बना रहा जो प्रशासन के लिए अक्षम तो था ही साथ-साथ अनेक प्रशासनिक योग्यताओं से दूर, नव स्थापित राज्य की आकांक्षाओं के अनुरूप विजित प्रदेश और इसमें रहनेवाले लोगों से संपर्क सूत्र साधने के लायक भी नहीं था । सरकारी कर्मचारी के रूप में व्यापारी दलाल तथा क्लर्क के रूप में भर्ती होकर आए

1. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध पृ.40

इन कर्मचारियों के लिए व्यवहार में दक्षता, चरित्र में प्रशासक का व्यवहार तथा स्थायित्व के लिए दूरदर्शी तथा नीति कुशल बनना आवश्यक हो गया था। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। इस कॉलेज की स्थापना कलकत्ता में 1800 ई. में हुई और 1854 ई. तक यह किसी रूप में चलता रहा । 1800 ई. में जॉन गिलक्राइस्ट फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के प्राध्यापक (प्रोफ़ेसर) हुए । 1802 में लल्लूजी लाल कवि की नियुक्ति भाषा मुंशी के पद पर हुई, फिर सदल मिश्र हिन्दी पंडित (हिन्दी मुंशी) के रूप में आए । गिलक्राइस्ट, लल्लूजी और सदल मिश्र ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी हिन्दुस्तानी गद्य के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । गिलक्राइस्ट अंग्रेजी व्यवस्था के अंग थे और इस दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे । जहाँ वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान भाव से बरतना चाहते थे ।[1]

हिन्दी + अरबी + फ़ारसी = हिन्दुस्तानी यह सूत्र गिलक्राइस्ट का था । अर्थात् दो हिस्से विदेशी भाषा - अरबी और फ़ारसी के और सिर्फ एक हिस्सा देशी भाषा हिन्दी का था । लल्लूलाल और सदल मिश्र जनप्रचलित खड़ी बोली के लेखक थे । गिलक्राइस्ट हिन्दी का वैशिष्ट्य अच्छी तरह समझते थे जबकि वे 'हिन्दुस्तानी' के पक्षधर थे । वे हिन्दुस्तानी को बोलचाल की भाषा जबकि हिन्दी को साहित्यिक भाषा का स्तर देते थे ।[2]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत स्पष्ट ही नीति-निर्धारण और तदनुरूप व्याकरण कोश आदि बनाने का दायित्व गिलक्राइस्ट का था । उन्होंने 'ए दिक्शनरी : इंगलिश एंड हिन्दुस्तानी', 'ए ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज', 'दि हिन्दी स्टोरी टैलर', 'डायलोग्स इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी', 'दि हिन्दी मैन्युअल' आदि पुस्तकें लिखीं । परन्तु प्रशिक्षणार्थियों के लिए वास्तविक रूप में गद्य के पाठ्यग्रंथों का निर्माण लल्लूलाल और सदल मिश्र के जिम्मे था ।[3]

जिस समय फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से हिन्दी भाषा में लेखनकार्य को अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा था । उसी समय कलकत्ता के आस-पास ईसाई मिशनरी बाइबिल के हिन्दी गद्य में अनुवाद करवाने के कार्य में सक्रिय थे । फलतः बाइबिल के अनुवाद, हिन्दी के विभिन्न रूपों तथा

---

1. हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.58
2. वहीं, पृ.59
3. वहीं

हिन्दी भाषी प्रदेशों की विभिन्न बोलियों में किए गए । फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की प्रशासकीय भाषा-नीति के अनुकूल खड़ी बोली - ब्रजभाषा के पहले ही नागरी तथा रोमन अक्षरों में उर्दू-हिन्दुस्तानी अनुवाद का सिलसिला शुरु हुआ। कष्णाचार्य का कहना है - "1805 में प्रकाशित बाइबिल के हिन्दुस्तानी अनुवाद - नागरी में मुद्रित (अनुवादक - विलियम हंटर) बाइबिल, हिन्दी-हिन्दुस्तानी की प्रथम बाइबिल है ।"[1]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में लल्लूलाल, नरसिंह ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि जैसे भाषा मुंशी हिन्दी भाषा के जाने-माने रचनाकार थे । इनमें से लल्लूलाल हिन्दुस्तानी अनुवादक के पद पर नियुक्त हुए थे । लल्लूलाल ने अनेकों ग्रंथों की रचना की परन्तु उनके अधिकांश ग्रंथ मौलिक नहीं हैं । 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'शकुन्तला नाटक' आदि ग्रंथ उनके मौलिक ग्रंथ नहीं हैं परन्तु उन्होंने केवल अनुवाद करके ही सृजित किए हैं । इसके अलावा कॉलेज ने हिन्दुस्तानी, बंगला, फ़ारसी और अरबी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे एवं प्रकाशित भी किए । इन ग्रंथों में 'वॉकेब्युलरी - इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' (अंग्रेजी - हिन्दुस्तानी शब्दावली, डायलॉग्ज़ (बातचीत), मिलिटरी टर्म्स (फ़ौजी शब्दावली), आर्टीकल्स ऑफ़ वॉऱ (फ़ौजी कानून) आदि अनेक शब्दावलियों का समावेश होता है । इनमें पारिभाषिक शब्द, हिन्दुस्तानी गिनती, दिन आदि का समावेश होता है । इनके अलावा गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में हिन्दी विभाग के विद्वानों द्वारा अनुवाद संग्रह आदि के रूप में अनूदित साहित्य की रचना की गई ।[2]

6.2 हिन्दी-गद्य पर अनुवाद का प्रभाव :

छायावाद से ही हिन्दी-गद्य का सर्वांगीण विकास हुआ । सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों का नेतृत्व करनेवाली संस्थाओं की प्रेरणा से देश को नई दिशा में ले चलनेवाला समृद्ध साहित्य धीरे-धीरे पनपने लगा । तो दूसरी ओर स्वतंत्र सृजनशील साहित्यकारों का साहित्य प्रचुर मात्रा में सृजित होने लगा । नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धा; दक्षिणी भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास; हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद आदि हिन्दी साहित्य की शुभाकांक्षी संस्थाओं ने 50-60

1. हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, कृष्णाचार्य, पृ.4
2. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध, पृ.44

वर्षों के अल्प समय में ही अनूदित, मौलिक तथा खोज से प्राप्त साहित्य के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के भंडार को विषय, विचार, भाव, भाषा-शैली और भाषा की दृष्टि से श्री सम्पन्न कर दिया । इन शुभाकांक्षी संस्थाओं के प्रयासों से तथा साहित्यकारों के स्वतंत्र प्रयत्नों से हिन्दी जब राष्ट्रभाषा के उच्च पद पर आसीन हुई और उसे अदालतों, राज्य-कार्यों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिला तो उसकी श्रेष्ठ उच्च कोटि की पुस्तकों के शब्दकोषों की आवश्यकता हुई । इसके अलावा विश्वविद्यालयों में बी.ए., एम.ए. जैसी कक्षाओं में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हुई तो ललित साहित्य के साथ ज्ञान-विज्ञान से लेकर साहित्य, शास्त्रीय, दार्शनिक विद्याओं की उच्च कोटि की पुस्तकों की आवश्यकता हुई । इस संबंध में मौलिक पुस्तकों का इतनी शीघ्रता से निर्माण नहीं हो सकता था । इसलिए हिन्दी के विद्वानों ने मौलिक साहित्य के निर्माण कार्य के साथ-साथ प्रान्तीय तथा विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यिक तथा अन्य विद्याओं संबंधी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद कार्य प्रारंभ किया और पाँच-छह वर्षों में ही हिन्दी भाषा में विभिन्न विद्याओं और विभिन्न शैलियों के ग्रंथों के अनुवाद दृष्टिगत होने लगे ।[1]

हिन्दी भाषा की तरह ही प्रांतीय भाषाओं में भी उपयोगी तथा वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव था । परिणाम स्वरूप प्रांतीय भाषाओं से अधिकांश ललित साहित्य संबंधी ग्रंथों का अनुवाद हुआ जिससे इन भाषाओं के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से हिन्दी विद्वान भी परिचित हुए और इन साहित्यिक श्रेष्ठताओं को अपनाकर हिन्दी गद्य में अवतरित किया ।

6.2.1 बंगला साहित्य से अनुवाद :

भारतीय साहित्य में जितने भी परस्पर अनुवाद हुए हैं, उनमें संभवत: सबसे अधिक अनुवाद बंगला - हिन्दी के बीच हुए हैं । तथा इसमें भी बंगला से हिन्दी में अनुवाद सर्वाधिक हुए हैं । बंगला-हिन्दी के लोकभाषिक संबंधों के प्रमाण एवं लोक साहित्य के अनुवाद के प्रमाण अत्यंत प्राचीनकाल से मिलते हैं । परन्तु यह अनुवाद, वर्तमान अनुवाद की संकल्पना से भिन्न होता था । साधु-संतों, 'घुंमतु बंगला' गायकों द्वारा अनजाने में होता था । एक भाषा के भजन-गीत आदि दूसरी भाषा में भाषा गीत हो जाते थे । उसके बाद

---

1. हिन्दी गद्य का वैभव काल, पृ.280

अध्याय-6

हिन्दी गद्य साहित्य : अनुवाद के झरोखे से

6.1 फोर्ट विलियम कॉलेज और अनुवाद

6.2 हिन्दी गद्य पर अनुवाद का प्रभाव

- **6.2.1** बंगला साहित्य से अनुवाद
- **6.2.2** गुजराती साहित्य से अनुवाद
- **6.2.3** दक्षिणी भाषाओं से अनुवाद
- **6.2.4** पश्चिमी साहित्य से अनुवाद
- **6.2.5** फ़ारसी और उर्दू साहित्य से अनुवाद

6.3 विविध वाद और अनुवाद

- **6.3.1** छायावाद और अनुवाद
- **6.3.2** प्रगतिवाद और अनुवाद
- **6.3.3** प्रयोगवाद और अनुवाद

अध्याय-6

हिन्दी गद्य साहित्य : अनुवाद के झरोखे से

किसी रसविहीन और महत्वहीन बात के लिए हिन्दी में कहावत है - "यह तो निरा गद्य है !" एक संस्कृत उक्ति है - गद्य, कवियों के लिए कसौटी रूप है । फिर भी भावों की सरल और व्यवस्थित अभिव्यक्ति तो गद्य में ही हो सकती है । हालाँकि हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल में साहित्यकारों और आचार्यों ने विशेषत: कविता अर्थात पद्य पर अधिकाधिक अपनी रुचि दिखाई । इन कालों में गद्य की रचना बहुत कम हुई । जबकि आधुनिक काल में गद्य साहित्य की रचना प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो अपने इतिहास लेखन में आधुनिक काल को 'गद्य-काल' के नाम से अभिहित किया है । हिन्दी साहित्य के सभी आद्य गद्य रूप, कहे जाने के लिए है जैसे 'वार्ता' बताने के लिए ('चौरासी वैष्णव की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' आदि), 'कथा' और 'भाषा टीका' कहने के लिए ('प्रेमसागर', भाषा योग वासिष्ठ आदि), 'कहानी सुनाने के लिए' ('रानी केतकी की कहानी' आदि) अथवा उपदेश देने के लिए ('नासिकेतापाख्यान' आदि) या शास्त्रार्थ या विचार के प्रचार के लिए (बाइबिल के अनुवाद, राजा राममोहनराय के शास्त्रार्थ या स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'वेद-भाष्य' आदि) होते थे ।[1] भाषा का प्राथमिक प्रयोग तो मौखिक रूप ही है । इस रूप पर साहित्यकारों ने अधिक बल दिया और आरंभिक रचनाएँ कविताशैली में गाकर सुनाने हेतु ('पृथ्वीराज राक्षस') अथवा तो वक्ताश्रोता शैली में (रामचरितमानस) सृजित हुई । धीरे-धीरे हिन्दी भाषा अपना रूप-आकार लेकर विकसित होने लगी । हिन्दी भाषा में गद्य रचनाओं का विकास करने में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

6.1 फ़ोर्ट विलियम कॉलेज और अनुवाद :

हिन्दी साहित्य के विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान के लिए फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का नाम स्वर्ण अक्षरों से हिन्दी साहित्य के इतिहास में अंकित है । इस कॉलेज की कहानी ईस्ट इण्डिया कंपनी के कर्मचारियों की कहानी है । ईस्ट इण्डिया कंपनी के कर्मचारियों के लिए ही फ़ोर्ट विलियम

---

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृ.11

कॉलेज की स्थापना की गई थी । भारत का दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्र का अधिकांश हिस्सा कंपनी के शासन में आ चुका था । उस समय लॉर्ड वेलेज़ली का शासन चल रहा था । भारतभर में उस समय तक कंपनी का शासन ही एक ऐसा शासन था कि जिसकी टक्कर का और कोई शासन, राज्य या दल नहीं था । कंपनी के उच्च अधिकारी इंग्लैण्ड से आते थे जिनको बोर्ड (कोर्ट) ऑफ़ डिरेक्टर्स स्वयं नियुक्त करके भेजता था । प्रारंभ में शासक वर्ग स्थानीय कर्मचारियों पर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं कर सकता था, इसलिए कंपनी शासन के लिए कनिष्ठ कर्मचारी भी बोर्ड (कोर्ट) ऑफ डिरेक्टर्स के द्वारा नियुक्त करके भेजे जाते थे । क्योंकि कनिष्ठ कर्मचारी भारत की स्थानीथ भाषाओं तथा स्थानीय सामाजिक रीति-रिवाजों से अनभिज्ञ होते थे, अतः शासक वर्ग को एक शिक्षा-संस्था की आवश्यकता महसूस हुई और फिर लॉर्ड वेलेजली ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना का कार्य शुरु किया ।[1]

ईस्ट इण्डिया कंपनी के कारण ही पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली । 1756 ई. तक अंग्रेज कंपनी को भारत में अपने अधिकारों तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए छलकपट करना पडा, लालच और खुशामद का मेल करना पड़ा तथा शौर्य का जामा पहनकर सूदखोर की तरह सख्ती से काम लेना पड़ा । इस कंपनी का मुख्य उद्देश्य भारत में आकर खूब धन कमाना था । किसी भी तरह धन कमाकर इंग्लैण्ड को अधिक समृद्ध बनाना ही इस कंपनी का मुख्य हेतु था । अतः उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित करने में कोई कमी नहीं छोड़ी । प्लासी और बंगाल के युद्ध के बाद कंपनी को महत्वपूर्ण राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो गए । और फिर भारत की राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर सत्ता हाँसिल करने के प्रयत्न कंपनी ने आरंभ कर दिए । सौभाग्यवश उसे इस कार्य में सफलता भी मिलती चली गई । इस कंपनी को भले ही अनेकों राजनैतिक आदि सत्ता प्राप्त हुई हों परंतु इस कंपनी के कर्मचारियों का मूल चरित्र तो वही व्यापारी ही बना रहा जो प्रशासन के लिए अक्षम तो था ही साथ-साथ अनेक प्रशासनिक योग्यताओं से दूर, नव स्थापित राज्य की आकांक्षाओं के अनुरूप विजित प्रदेश और इसमें रहनेवाले लोगों से संपर्क सूत्र साधने के लायक भी नहीं था । सरकारी कर्मचारी के रूप में व्यापारी दलाल तथा क्लर्क के रूप में भर्ती होकर आए

1. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध पृ.40

इन कर्मचारियों के लिए व्यवहार में दक्षता, चरित्र में प्रशासक का व्यवहार तथा स्थायित्व के लिए दूरदर्शी तथा नीति कुशल बनना आवश्यक हो गया था। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। इस कॉलेज की स्थापना कलकत्ता में 1800 ई. में हुई और 1854 ई. तक यह किसी रूप में चलता रहा । 1800 ई. में जॉन गिलक्राइस्ट फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के प्राध्यापक (प्रोफ़ेसर) हुए । 1802 में लल्लूजी लाल कवि की नियुक्ति भाषा मुंशी के पद पर हुई, फिर सदल मिश्र हिन्दी पंडित (हिन्दी मुंशी) के रूप में आए । गिलक्राइस्ट, लल्लूजी और सदल मिश्र ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी हिन्दुस्तानी गद्य के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । गिलक्राइस्ट अंग्रेजी व्यवस्था के अंग थे और इस दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे । जहाँ वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान भाव से बरतना चाहते थे ।[1]

हिन्दी + अरबी + फ़ारसी = हिन्दुस्तानी यह सूत्र गिलक्राइस्ट का था । अर्थात् दो हिस्से विदेशी भाषा - अरबी और फ़ारसी के और सिर्फ एक हिस्सा देशी भाषा हिन्दी का था । लल्लूलाल और सदल मिश्र जनप्रचलित खड़ी बोली के लेखक थे । गिलक्राइस्ट हिन्दी का वैशिष्ट्य अच्छी तरह समझते थे जबकि वे 'हिन्दुस्तानी' के पक्षधर थे । वे हिन्दुस्तानी को बोलचाल की भाषा जबकि हिन्दी को साहित्यिक भाषा का स्तर देते थे ।[2]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत स्पष्ट ही नीति-निर्धारण और तदनुरूप व्याकरण कोश आदि बनाने का दायित्व गिलक्राइस्ट का था । उन्होंने 'ए दिक्शनरी : इंगलिश एंड हिन्दुस्तानी', 'ए ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज', 'दि हिन्दी स्टोरी टैलर', 'डायलोग्स इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी', 'दि हिन्दी मैन्युअल' आदि पुस्तकें लिखीं । परन्तु प्रशिक्षणार्थियों के लिए वास्तविक रूप में गद्य के पाठ्यग्रंथों का निर्माण लल्लूलाल और सदल मिश्र के जिम्मे था ।[3]

जिस समय फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से हिन्दी भाषा में लेखनकार्य को अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा था । उसी समय कलकत्ता के आस-पास ईसाई मिशनरी बाइबिल के हिन्दी गद्य में अनुवाद करवाने के कार्य में सक्रिय थे । फलतः बाइबिल के अनुवाद, हिन्दी के विभिन्न रूपों तथा

1. हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.58
2. वहीं, पृ.59
3. वहीं

हिन्दी भाषी प्रदेशों की विभिन्न बोलियों में किए गए । फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की प्रशासकीय भाषा-नीति के अनुकूल खड़ी बोली - ब्रजभाषा के पहले ही नागरी तथा रोमन अक्षरों में उर्दू-हिन्दुस्तानी अनुवाद का सिलसिला शुरु हुआ। कष्णाचार्य का कहना है - "1805 में प्रकाशित बाइबिल के हिन्दुस्तानी अनुवाद - नागरी में मुद्रित (अनुवादक - विलियम हंटर) बाइबिल, हिन्दी-हिन्दुस्तानी की प्रथम बाइबिल है ।"[1]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में लल्लूलाल, नरसिंह ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि जैसे भाषा मुंशी हिन्दी भाषा के जाने-माने रचनाकार थे । इनमें से लल्लूलाल हिन्दुस्तानी अनुवादक के पद पर नियुक्त हुए थे । लल्लूलाल ने अनेकों ग्रंथों की रचना की परन्तु उनके अधिकांश ग्रंथ मौलिक नहीं हैं । 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'शकुन्तला नाटक' आदि ग्रंथ उनके मौलिक ग्रंथ नहीं हैं परन्तु उन्होंने केवल अनुवाद करके ही सृजित किए हैं । इसके अलावा कॉलेज ने हिन्दुस्तानी, बंगला, फ़ारसी और अरबी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे एवं प्रकाशित भी किए । इन ग्रंथों में 'वॉकेब्युलरी - इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' (अंग्रेजी - हिन्दुस्तानी शब्दावली, डायलॉग्ज़ (बातचीत), मिलिटरी टर्म्स (फ़ौजी शब्दावली), आर्टीकल्स ऑफ़ वॉऱ (फ़ौजी कानून) आदि अनेक शब्दावलियों का समावेश होता है । इनमें पारिभाषिक शब्द, हिन्दुस्तानी गिनती, दिन आदि का समावेश होता है । इनके अलावा गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में हिन्दी विभाग के विद्धानों द्वारा अनुवाद संग्रह आदि के रूप में अनूदित साहित्य की रचना की गई ।[2]

6.2 हिन्दी-गद्य पर अनुवाद का प्रभाव :

छायावाद से ही हिन्दी-गद्य का सर्वांगीण विकास हुआ । सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों का नेतृत्व करनेवाली संस्थाओं की प्रेरणा से देश को नई दिशा में ले चलनेवाला समृध्द साहित्य धीरे-धीरे पनपने लगा । तो दूसरी ओर स्वतंत्र सृजनशील साहित्यकारों का साहित्य प्रचुर मात्रा में सृजित होने लगा । नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धा; दक्षिणी भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास; हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद आदि हिन्दी साहित्य की शुभाकांक्षी संस्थाओं ने 50-60

1. हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, कृष्णाचार्य, पृ.4
2. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखें से अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध, पृ.44

वर्षों के अल्प समय में ही अनूदित, मौलिक तथा खोज से प्राप्त साहित्य के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के भंडार को विषय, विचार, भाव, भाषा-शैली और भाषा की दृष्टि से श्री सम्पन्न कर दिया । इन शुभाकांक्षी संस्थाओं के प्रयासों से तथा साहित्यकारों के स्वतंत्र प्रयत्नों से हिन्दी जब राष्ट्रभाषा के उच्च पद पर आसीन हुई और उसे अदालतों, राज्य-कार्यों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिला तो उसकी श्रेष्ठ उच्च कोटि की पुस्तकों के शब्दकोषों की आवश्यकता हुई । इसके अलावा विश्वविद्यालयों में बी.ए., एम.ए. जैसी कक्षाओं में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हुई तो ललित साहित्य के साथ ज्ञान-विज्ञान से लेकर साहित्य, शास्त्रीय, दार्शनिक विद्याओं की उच्च कोटि की पुस्तकों की आवश्यकता हुई । इस संबंध में मौलिक पुस्तकों का इतनी शीघ्रता से निर्माण नहीं हो सकता था । इसलिए हिन्दी के विद्वानों ने मौलिक साहित्य के निर्माण कार्य के साथ-साथ प्रान्तीय तथा विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यिक तथा अन्य विद्याओं संबंधी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद कार्य प्रारंभ किया और पाँच-छह वर्षों में ही हिन्दी भाषा में विभिन्न विद्याओं और विभिन्न शैलियों के ग्रंथों के अनुवाद दृष्टिगत होने लगे ।[1]

हिन्दी भाषा की तरह ही प्रांतीय भाषाओं में भी उपयोगी तथा वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव था । परिणाम स्वरूप प्रांतीय भाषाओं से अधिकांश ललित साहित्य संबंधी ग्रंथों का अनुवाद हुआ जिससे इन भाषाओं के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से हिन्दी विद्वान भी परिचित हुए और इन साहित्यिक श्रेष्ठताओं को अपनाकर हिन्दी गद्य में अवतरित किया ।

6.2.1 बंगला साहित्य से अनुवाद :

भारतीय साहित्य में जितने भी परस्पर अनुवाद हुए हैं, उनमें संभवतः सबसे अधिक अनुवाद बंगला - हिन्दी के बीच हुए हैं । तथा इसमें भी बंगला से हिन्दी में अनुवाद सर्वाधिक हुए हैं । बंगला-हिन्दी के लोकभाषिक संबंधों के प्रमाण एवं लोक साहित्य के अनुवाद के प्रमाण अत्यंत प्राचीनकाल से मिलते हैं । परन्तु यह अनुवाद, वर्तमान अनुवाद की संकल्पना से भिन्न होता था । साधु-संतों, 'घुंमतु बंगला' गायकों द्वारा अनजाने में होता था । एक भाषा के भजन-गीत आदि दूसरी भाषा में भाषा गीत हो जाते थे । उसके बाद

1. हिन्दी गद्य का वैभव काल, पृ.280

नवाबों के काल में और अंग्रेजों के प्रारंभिक शासनकाल के दौरान भी बंगला-हिन्दी के परस्पर प्रभावीकरण की प्रक्रिया अनायास चलती रही ।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हिन्दी की उच्च परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में बंगला भाषा के अनूदित वाङ्मय की रचनाएँ अनिवार्यतः रही थीं । बंकिमचन्द्र, शरच्चंद्र आदि ने रचनाओं के स्वत्वाधिकार के विषय में कड़ी शर्तें नहीं बनाई थीं । अतएव अनेक चतुर व्यावसायिक हिन्दी प्रकाशकों ने सस्ते अनुवादकों द्वारा अनुवाद करवाकर खूब धन कमाया । सामान्य पाठक मूल रचनाकार के नाम से संतुष्ट थे, वे अनुवादों की तुलना का कष्ट नहीं उठाते थे । इस क्षेत्र में कई घटिया अनुवादक अवश्य हुए परन्तु अच्छे अनुवादक भी हुए । बम्बई के हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय ने अपना प्रकाशन कार्य बंगला-हिन्दी अनुवाद पर केंद्रित किया था । रूपनारायण पांडेय प्रारंभिक बंगला-हिन्दी अनुवादकों में बड़े सफल थे । आगे जितने अनुवादक हुए उनमें हंसकुमार तिवारी प्रामाणिक अनुवाद के लिए मशहूर हुए ।[2]

भारत में अंग्रेजों के प्रारंभिक शासनकाल में तो बंगला से हिन्दी अनुवाद हुए ही, परन्तु तत्पश्चात् कई मुस्लिम शायरों ने एक ही भाववाली रचनाएँ बंगला, हिन्दुस्तानी एवं फारसी आदि भाषाओं में एक साथ रचीं । रवीन्द्रनाथ टैगोर के बाद बंगाल के सर्वाधिक सुविख्यात कवि काज़ी नजरूल इस्लाम हैं । काजी नजरूल ने अपने अनेक गीतों में बंगला पंक्तियों के बीच-बीच में हिन्दुस्तानी पंक्तियाँ भी डाल दी हैं । उनके ऐसे अनेक गीत हैं जिन्हें उन्होंने हिन्दी एवं बंगला मिश्रित भाषा में लिखा ।[3] यथा -

बौजे गोपी खेले होरी
बाजे आनंदों नवोधोनो प्रेमेर साथे ।

इसके बाद बंगला-हिन्दी अनुवाद, भारत में मुद्रण एवं पत्रकारिता के आरंभ होने के समय से ही मिलते हैं । इस समय तक केवल साहित्यिक

---

1. अनुवाद पत्रिका, अंक 99 , अप्रैल-जून 1999 में प्रकाशित राम विनोद रे का लेख 'हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य', पृ.50
2. अनुवाद भारती, अंक 18-19 , जुलाई-दिसंबर 1999, संपादक - डॉ. राम गोपाल सिंह में प्रकाशित डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर का लेख 'बंगला-मलयालम अनुवाद क्षेत्र का निराला साधक' पृ.15
3. अनुवाद, अंक 99 , अप्रैल-जून 1999 में प्रकाशित राम विनोद रे का लेख 'हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य', पृ.50

कृतियों के ही अनुवाद पाए गए हैं । साहित्य से इतर विषयों तथा सामाजिक विज्ञानों, राजनीति विज्ञान आदि में बहुत कम अनुवाद हुए हैं । जो भी हुए हैं वे हिन्दी से बंगला भाषा में ही हुए हैं । साहित्येत्तर विषयों से संबंधित कुछ ही बंगला पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी भाषा में हुआ है ।[1]

हिन्दी भाषा में बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरच्चन्द्र का साहित्य ही अधिक अनूदित हुआ है और हिन्दी साहित्य अधिकतः इनकी ही विचारधारा से प्रभावित हुआ है । अलौकिक विचारों की अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ टैगोर और बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के साहित्य में अधिक मिलती है । बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ', 'कपाल कुंडला' आदि पर योग और तंत्र के प्रभाव से अलौकिकता की मुद्रा स्पष्ट है । बंगाल से योग और तंत्र का विशेष संबंध रहा है । रवीन्द्रनाथ टैगोर के कथा-साहित्य में कहीं-कहीं अलौकिक विचारधारा का समावेश हुआ है । इसके दो प्रकार देखे जा सकते हैं । पहले प्रकार में अलौकिक घटनाओं के माध्यम से अलौकिकता की प्रतीति कराई गई है । दूसरे प्रकार में प्रत्यक्ष रूप से अलौकिक घटनाओं का चित्रण हुआ है, लेकिन इस प्रकार के चित्रण में अलौकिक घटनाओं का मनोवैज्ञानिक कारण बताकर यथार्थ का स्पर्श दे दिया गया है । प्रथम प्रकार की रचनाओं में 'डाक घर', 'दृष्टिदान' में संकलित 'एक बरसाती कहानी' को लिया जा सकता है । इस प्रकार की रचनाओं का प्रभाव हिन्दी भाषा पर कम पड़ा है । केवल रायकृष्णदास, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र और कहीं-कहीं प्रेमचन्द तथा सुदर्शन की रचनाओं में कुछ कहानियाँ इस प्रकार की हैं । रायकृष्णदास की 'साधना' और 'प्रवाल' (संग्रह), जयशंकर प्रसाद की 'चित्रवाले पत्थर' जैनेन्द्र की 'नीलम देश की राजकन्या', प्रेमचन्द की 'शाप' और सुदर्शन कृत 'पुनर्जन्म' ऐसी ही कहानियाँ हैं । दूसरे प्रकार की कहानियों में 'मणिहीन', 'जीवित मृत' तथा 'रात में' कहानियाँ उल्लेखनीय हैं । इस प्रकार की रचनाएँ हिन्दी में जैनेन्द्र, सुदर्शन और प्रसाद ने की है ।[2]

राम विनोद रे का कहना है कि "व्यवस्थित रूप से अनूदित एवं प्रकाशित बंगला कृतियों में जो सबसे पुरानी हैं उनमें माइकल मधुसूदन दत्त की 'क्या इसी को सभ्यता कहते हैं' (1888) तथा 'कष्णकुमारी' (1888)

---

1. अनुवाद, अंक 99, अप्रैल-जून 1999 में प्रकाशित राम विनोद रे का लेख 'हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य', पृ.50
2. हिन्दी गद्य का वैभव काल, पृ.282

शीर्षक से प्रकाशित कृति जिनका हिन्दी अनुवाद ब्रजनाथ ने किया था और माइकल मधुसूदन दत्त की 'कृष्णकुमार' (1888) तथा 'वीर नारी' (1889) शीर्षक से प्रकाशित कृति जिनका अनुवाद रामकृष्ण वर्मा ने किया था तथा स्वर्णकुमारी देवी द्वारा रचित 'दीप निर्वाण' (1884) का अदित नारायण लाल वर्मा द्वारा किया गया अनुवाद आदि उल्लेखनीय हैं ।"[1]

बंगला भाषा के साहित्यकारों की रचनाओं के हिन्दी भाषा में अनुवाद ने 1951-52 में अपनी गति पकड़नी शुरु की और 1960 तक पहुँचते-पहुँचते बंगाली लेखक हिन्दी पाठकों में अपना ठीक-ठीक स्थान जमा चुके थे । विभिन्न भाषाओं की रचनाएँ अधिकांशतः पहले हिन्दी में अनूदित होती हैं उसके बाद अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी से अनूदित कर दी जाती हैं । बंगला साहित्य के मामले में भी यही सत्य है - शरच्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बिमल मित्र आदि की अधिकांश कृतियों का गुजराती, मराठी, दक्षिण भाषाओं में अनुवाद, हिन्दी अनुवादों के आधार पर हुआ है । बंगला से हिन्दी में सर्वाधिक अनुवाद हंसकुमार तिवारी ने किए हैं । सर्वोत्तम हिन्दी अनुवाद भी हंसकुमार तिवारी ने ही किए हैं । इनके अलावा रामचन्द्र टंडन, मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र वर्मा, रूपनारायण पाण्डेय, प्रतापनारायण मिश्र, घनेश्वर शास्त्री, लक्ष्मीधर वाजपेयी, रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी, ओंकार शरद, नेमिचन्द जैन, अज्ञेय मन्मथ नाथ गुप्त आदि अनेक अनुवादकों ने बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए ।

राम विनोद रे ने हिन्दी में अनूदित बंगला कृतियों की सूची तैयार की जो निम्नानुसार है :

कृति	मूल लेखक	अनुवादक
वीरांगना	माइकल मधुसूदन दत्त	मैथिलीशरण गुप्त
मेघनाथ वध	माइकल मधुसूदन दत्त	मैथिलीशरण गुप्त
विरहिणी ब्रजांगना	माइकल मधुसूदन दत्त	मैथिलीशरण गुप्त
जीवनानंददासा की कविताएँ	जीवनानन्द दास	स्वदेश भारती
स्मृति सत्ता भविष्यति तथा अन्य कविताएँ	विष्णुदेव	भारतभूषण अग्रवाल

1. अनुवाद, अंक 99, अप्रैल-जून 1999 में प्रकाशित राम विनोद रे का लेख 'हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य', पृ.51

रविन्द्रकविता कानन	रवीन्द्रनाथ टैगोर	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
गीतांजलि	रवीन्द्रनाथ टैगोर	हंसकुमार तिवारी
बंगलाकाव्य की भूमिका	हुमायूँ कबीर	हंसकुमार तिवारी
देवदास	शरत्चन्द्र	हंसकुमार तिवारी

इनके अतिरिक्त लगभग 300 रचनाओं के हिन्दी अनुवादक मूललेखक और रचना के नाम के साथ रामविनोद रे ने अनुवाद अंक में सूची तैयार की है ।[1]

6.2.2 गुजराती साहित्य से अनुवाद :

अनूदित साहित्य में बंगला से हिन्दी में अनुवाद के बाद सर्वाधिक अनुवाद गुजराती से हिन्दी में हुए हैं । गुजराती साहित्य से गुजराती प्रसिद्ध कवि, साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के ग्रंथों का अनुवाद सबसे अधिक हुआ है । के.एम.मुंशी ने ऐतिहासिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे । इन उपन्यासों से गुजराती साहित्य की तो श्रीवृद्धि हुई ही साथ ही इनके हिन्दी में अनुवाद होने से हिन्दी भाषा को भी विस्तृत आयाम प्राप्त हुए । गुजराती भाषा में रचित ऐतिहासिक उपन्यासों से पूर्व हिन्दी भाषा में ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास लगभग नहीं थे । मुंशी के उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य के सामने ऐतिहासिक उपन्यासों का एक नया आदर्श प्रस्तुत किया । इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय संस्कृति और इतिहास के पहलुओं के गौरव को स्पष्ट करते हुए कथानकों को स्थान दिया गया है । 'जय सोमनाथ', 'राजाधिराज', 'कालवाधेरना', 'पृथ्वीवल्लभ', 'गुजरात का नाथ', 'पाटण का प्रभुत्व' आदि इनके सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं । इनके उपन्यासों में कथा, चरित्र, वातावरण, देश-काल आदि दृष्टियों से ऐतिहासिकता का दायित्व पूर्णतः निभाया गया है । इन उपन्यासों में जीवन को प्रेरणा देनेवाले मर्मस्पर्शी चित्र हैं ।[2]

हिन्दी में भी ऐतिहासिक उपन्यास की रचना को मुंशीजी के उपन्यासों से ही प्रेरणा मिली । जिस तरह मुंशीजी ने गुजरात को केन्द्र में रखकर ऐतिहासिक साहित्य की रचना की है उसी तरह वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड के जीवन को लक्ष्य में रखकर अनेक उपन्यास लिखे हैं । उनकी

---

1. अनुवाद : अंक 99 , अप्रैल-जून 1999 में प्रकाशित राम विनोद रे का लेख 'हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य' पृ.68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76
2. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का लघुशोध प्रबंध, पृ.

रचनाओं में वर्णन-कौशल पर मुंशीजी का सुस्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । मुंशीजी के अनूदित सामाजिक उपन्यासों ने भी उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की तरह हिन्दी कथा-साहित्य को प्रेरणा दी है । 'प्रतिशोध' (वेरनी वसूलात) इनका सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है । मुंशीजी के सामाजिक उपन्यासों में पुराणों के आधार से उत्पन्न रूढ़ियों का खंडन हुआ है । इन उपन्यासों का लक्ष्य समाज-सुधार ही है । विषय की दृष्टि से हिन्दी को नया आदर्श मिला । कथा का आकर्षक विधान, नाटकीय शैली मुंशीजी की ही प्रेरणा से वैभवकालीन हिन्दी-साहित्य में दिखाई देती है । कथा साहित्य के अलावा हिन्दी-साहित्य पर गुजराती से अनूदित निबन्धों का भी प्रभाव पड़ा है । काका कालेलकर, महादेवभाई देसाई, इन्द्र वसावड़ा आदि ने गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखा है । इनकी शैली के माध्यम से गुजराती शैली की विशेषताएँ हिन्दी में आईं । गुजराती साहित्यकारों का विशिष्ट प्रभाव तो किसी हिन्दी साहित्यकार पर नहीं पड़ा फिर भी हिन्दी में हास्य व्यंग्य प्रधान निबन्धों की पद्धति पर इनकी प्रेरणा सुस्पष्ट दिखाई देती है ।[1]

6.2.3 दक्षिणी भाषाओं से अनुवाद :

हिन्दी भाषा में गुजराती साहित्य की तरह ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रयासों से हिन्दी साहित्य दक्षिणी साहित्य के संपर्क में आया । 1950 से पूर्व दक्षिणी भाषाओं से हिन्दी में बहुत कम अनुवाद हुए । राष्ट्रभाषा हिन्दी-प्रचार सभा की मुख्य पत्रिका 'राष्ट्र भारती' में प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद हुआ है । इसमें अधिकांशतः तेलगू, कन्नड़ और मलयालम की कहानियाँ अनूदित हुई हैं । इसके अलावा कुछ उपन्यास और नाटक भी अनूदित हुए हैं, परन्तु वे अल्प संख्या में हैं । और जो भी अनुवाद हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि हिन्दी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं की तरह देश की आधुनिक, राजनीतिक, सामाजिक, विचारधाराओं ने दक्षिणी भाषा साहित्य को प्रभावित किया है ।[2]

तेलुगु साहित्य की अधिकांश प्रारंभिक कृतियाँ संस्कृत भाषा से अनूदित हैं । डॉ. विजयराघव रेड्डी लिखते हैं कि "यह बड़ी सुखद बात है कि गांधीजी के राष्ट्रभाषा प्रचार आन्दोलन से बहुत पहले ही अर्थात् गत् शताब्दी

1. हिन्दी गद्य का वैभवकाल, पृ.289
2. वही, पृ.290

(19वीं शताब्दी) के उत्तरार्द्ध में ही शिष्टुकृष्णमूर्ति शास्त्री एवं मंड नरहरि कामय्या ने रामचरितमानस का तेलुगु पद्यानुवाद प्रस्तुत किया। गीतांजलि को नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद अधिकांश बंगला की गद्य कृतियों का तेलुगु में अनुवाद हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में गांधीजी के प्रयासों से तेलुगु भाषियों ने भी हिन्दी सीखी और वे इस सदी के प्रथम दशक से हिन्दी से अपनी मातृभाषा में अनुवाद करने लगे। परन्तु हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद का कार्य धीरे-धीरे कम होता गया। जैसे-जैसे तेलुगुभाषी अपना प्रभुत्व हिन्दी पर जमाते हुए और जैसे-जैसे यह महसूस करते गए कि वे मूलरूप से हिन्दी में अच्छी तरह अपनी बात कह सकते हैं, लिख सकते हैं तब से तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद जोर पकड़ने लगा।"[1]

आज परिस्थिति यह है कि तेलुगुभाषी अनुवाद कार्य करते हैं तो तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद करते हैं। सौ से अधिक तेलुगुभाषी हिन्दी में मौलिक रूप से लिख रहे हैं और अपनी भाषा की उत्कृष्ट रचनाओं का हिन्दी में धड़ल्ले से अनुवाद कर रहे हैं। एक ही रचना के एकाधिक अनुवाद भी हो रहे हैं।[2]

दक्षिणी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करने की पारस्परिक एक विशेषता रही है। दक्षिण भारत की एक प्राचीनतम भाषा है तामिल। डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम का कहना है - "तमिल विश्व की प्राचीन भाषाओं में से एक है जिसमें दो हजार वर्ष पूर्व ही अनुवाद-चेतना और चिंतन की परंपरा शुरू हो गई थी। तमिल साहित्य में एक युग अनुवाद का युग भी रहा, जब अनुवादकों को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। 'कंब रामायण' और 'विल्लि भारतम्' क्रमश: रामायण और महाभारत के स्वतंत्र अनुवाद हैं। मध्यकाल के दौरान समग्र भारत में यह प्रवृत्ति रही है। हिन्दी और तमिल के बीच परस्पर अनुवाद का सूत्रपात बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ। गांधीजी द्वारा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना, राष्ट्रीयता की लहर, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रसार और हिन्दी फ़िल्मों की लोकप्रियता के कारण इन अनुवादों को प्रोत्साहन मिला। तीस और चालीस के दशकों में प्रेमचन्द, कौशिक, भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन आदि के उपन्यास पत्र-पत्रिकाओं

---

1. अनुवाद अंक 82-83, 1995 में प्रकाशित डॉ. विजय राघव की प्रस्तुती, पृ.149
2. वही, पृ.290

में धारावाहिक रूप से छपे । भाषावार राज्यों के गठन के बाद यह प्रवृत्ति ज़रा मंद हुई । इस बीच तमिल में कल्कि, अखिलन, जयकांतन, शांडिल्पन आदि की कृतियों के हिन्दी अनुवाद हुए । गत बीस-पच्चीस वर्षों में नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादमी, भारतीय ज्ञानपीठ आदि के द्वारा भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकों के परस्पर आदान-प्रदान के अंतर्गत तमिल से हिन्दी में और हिन्दी से तमिल में अनेक पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं ।[1]

दक्षिणी भाषा कन्नड़ और कन्नड़ साहित्य को हिन्दी के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर परिचय कराने की दिशा में यद्यपि काफी काम हुआ है, तथापि हिन्दी से कन्नड़ भाषा में हुए अनुवादों की तुलना में काफी कम है। इस संदर्भ में प्रो. तिप्पेस्वामी का कहना है कि "कन्नड़ से हिन्दी में और हिन्दी से कन्नड़ में अनुवाद कार्य कन्नड़ भाषियों को ही करना पड़ा है तथा कन्नड़ भाषियों की मातृभाषा कन्नड़ है और हिन्दी इनकी सीखी हुई भाषा है। हिन्दी साहित्य पर कन्नड़भाषी हिन्दी विद्वानों का जबरदस्त अधिकार तो होता है परन्तु इस भाषा के आंतरिक सूक्ष्मों से उसके बोल-चाली रूपों से और उसके सहज अभिव्यंजनापरक विधानों से बहुधा अपरिचित होता है । इस कारण से इनके हिन्दी अनुवादों में वह सहजता नहीं आ पाती जो सहजता इनके कन्नड़ अनुवादों में पाई जाती है । हिन्दी से कन्नड़ में अनूदित रचनाओं की तुलना में कन्नड़ से हिन्दी में अनूदित कृतियों की संख्या कम है ।"[2]

अखिल भारतीय स्तर पर अनेक मान्यता प्राप्त कवि कन्नड़ में हैं । परन्तु ये सभी कवि हिन्दी में अनूदित नहीं हुए हैं । भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत कुवेंपु, द.रा.बेन्द्रे, वि.के.गोकाक, मास्ति वेंकटेश अप्पंगार, यू.आर.अनंतमूर्ति कन्नड़ के शिखर कवि हैं । इनके कुछ अनुवाद यत्र-तत्र प्रकाशित संग्रहों में देखे जा सकते हैं । लेकिन समग्र रूप से इनका अनुवाद नहीं हो पाया है ।[3]

साहित्य अकादमी के भारतीय कविता (1953, 1954-55, 1958-59) के संग्रहों में कन्नड़ के सुविख्यात कवियों जैसे - कवेंपु, बेन्द्रे, के.एस.नरसिंह

1. अनुवाद; अंक 106, जनवरी-मार्च 2001, में प्रकाशित, डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम का लेख 'तमिल-हिन्दी अनुवाद : चुनौतियाँ और समाधान' पृ.29
2. अनुवाद अंक 109-110, अक्टूबर 2001, मार्च 2002 में प्रकाशित प्रो.तिजेस्वामी का लेख 'कन्नड़ काव्यानुवाद : मूल्यांकनपरक सर्वेक्षण' पृ.128
3. वही पृ.129

स्वामी, गोपालकृष्णन अडिग, चेन्नवीर कणवि जयदेव तामि लिगाडे, बी.एच.श्रीधर, वी.के.गोकाक, रामचन्द्र शर्मा, पु.ति.नरसिंहाचार्य, जी.एस.शिवरुद्रप्पा, दिनकर देसाई, गोविन्द पै, गंगाधर चिताल, वी.जी.भट, आनंदकद, काव्यानन्द आदि की चुनी हुई दो-एक कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं । इन कविताओं के अनुवाद डॉ. हिरण्मय, बी.आर.नारायण, सोमशेखर सोम और बी.वी. कारन्त ने प्रस्तुत किए हैं । इनके अलावा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय अपने वार्षिकियों में प्रति वर्ष दो-तीन कन्नड़ कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करता है । आधुनिक काव्यधारा के कई महत्वपूर्ण कवियों के अनुवाद इनमें प्रकाशित हुए हैं । निदेशालय से प्रकाशित 'भारतीय कविता' में कन्नड़ कविताओं के अनुवाद हैं । निदेशालय से ही प्रकाशित 'भारत की कवयित्रियाँ' संकलन में डॉ. तिप्पेस्वामी और डॉ. प्रभाशंकर प्रेमी से अनूदित दस प्रतिष्ठित कवयित्रियों की कविताओं के हिन्दी अनुवाद हैं । मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से प्रकाशित 'आधुनिक कन्नड़ काव्य' कन्नड़ कविताओं के हिन्दी अनुवाद का अच्छा संग्रह है । डॉ. टी.आर.भट ने कन्नड़ के चर्चित कवि डॉ. पी.एस.रामानुज की पचपन कन्नड़ कविताओं का हिन्दी में अनुवाद करके 'नदी के साथ बहते' शीर्षक से एक काव्य संग्रह प्रकाशित किया है ।[1]

इस प्रकार हिन्दी के साहित्यकारों ने बंगला, गुजराती, तेलुगु, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं के साहित्य का अनुशीलन करके अभिव्यक्ति, अनुभूति, विषय आदि दृष्टियों से उनकी विशेषताओं को आत्मसात् करके हिन्दी में उतारा ।

6.2.4 पश्चिमी साहित्य से अनुवाद :

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी साहित्य को पश्चिमी साहित्य ने प्रभावित किया है । भुवनेश्वर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, अज्ञेय, यशपाल आदि ने इस बात का कहीं-कहीं स्वीकार किया है कि पश्चिमी साहित्य ने हिन्दी साहित्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है । हिन्दी साहित्य पर पश्चिमी साहित्य का अप्रत्यक्ष प्रभाव ही अधिक पड़ा है । पद्य की अपेक्षा गद्य ने ही इस प्रभाव को सच्चाई और सफलता से ग्रहण किया है । हिन्दी भाषा में फ्रांसीसी, रूसी और अंग्रेजी साहित्य एक साथ अनूदित हुआ है, इसलिए तीनों भाषाओं के तत्व पश्चिम से एक साथ प्राप्त हुए हैं । पश्चिम के संपर्क और शिक्षा के विकास ने

---

1. अनुवाद अंक 109-110, अक्टूबर 2001, मार्च 2002 में प्रकाशित प्रो.तिजेस्वामी का लेख 'कन्नड़ काव्यानुवाद : मूल्यांकनपरक सर्वेक्षण' पृ.132

मानव के हृदय और मस्तिष्क में गहन संबंध स्थापित किया है । इसके परिणाम स्वरूप मनुष्य को परलोक में ही समृद्धि और सुख मिले, इस भावना को छोड़ हिन्दी गद्यकारों ने जो नवीन दृष्टिकोण अपनाया है वह है करूणा और सहानुभूति के साथ मानव के इसी जीवन के कार्य-कलापों से सहानुभूति । इस दृष्टिकोण को मुंशी प्रेमचंद की 'रंगभूमि', 'गोदान' और अधिकांश कहानियों में, जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र', 'वीदट्रिस', 'सजा' आदि कहानियों में, महादेवी वर्मा के 'रेखाचित्र' और निबंधों में, सुभद्राकुमारी चौहान, भगवतीचरण वर्मा और सुदर्शन के कथा साहित्य में देखा जा सकता है ।[1]

पश्चिम के साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का बीजारोपण टॉल्सटॉय ने किया । प्रेमचन्द ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में टॉल्सटॉय से ही प्रेरणा ली । गांधीजी के विचारप्रधान साहित्य तथा टॉल्सटॉय के विचारों में समानता है । अंग्रेजी साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के लिए हार्डी का नाम लिया जाता है । प्रेमचन्द आदि कथाकारों और नाटककारों, निबंधकारों आदि पर इस आदर्शवाद का भारी पड़ा । वैसे भी भारतवासी सदा ही आदर्शवादी रहे हैं, इसलिए यह प्रवृत्ति हिन्दी गद्य लेखकों के वातावरण और संस्कारों के अनुकूल थी । इसके अलावा वैभवकाल के अंतिम चरणों में कुछ लेखकों में अश्लील दृश्यों के चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई दी थी । यशपाल की कहानियों और उपन्यासों में 'दादा कामरेड़'[2], अज्ञेय की 'नदी के द्वीप'[3] आदि में अश्लीलता की सीमा तक यथार्थ चित्रण हुआ है । यह प्रभाव फ्रांसीसी गद्यलेखक बालज़ाक, मोपासा और ज़ोला के साहित्य से आया है ।[4] इसके अलावा विदेशी साहित्य के अनुवाद की संभावनाएँ अनन्त हैं । आधुनिक गद्य साहित्य के अभाव, ज्ञान-विज्ञान के अभाव में यह भावगत हीन स्थिति सभी बुद्धिजीवी महसूस कर रहे थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'निजभाषा' की उन्नति के लिए अनुवाद को ही सबसे बड़ी प्रविधि के रूप में स्वीकार किया था ।[5]

आधुनिक युग में विदेशी साहित्य के भारतीयकरण या सांस्कृतिक

---

1. हिन्दी गद्य का वैभवकाल, पृ.292
2. दादा कामरेड, ले. यशपाल, पृ.41
3. 'नदी के द्वीप' ले. अज्ञेय, पृ.143,144,145
4. हिन्दी गद्य का वैभवकाल, पृ.300
5. अनुवाद अंक 102-103, में प्रकाशित प्रो.जी. गोपीनाथन का लेख 'विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद', पृ.293

रूपान्तरण की प्रवृत्ति विशेष रूपेण दिखाई पड़ती है । इस समय अंग्रेजी से इतर विश्व भाषाओं में से केवल फ्रेंच और रूसी की किंचित् रचनाएँ अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित हुई थीं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेजी माध्यम से ही हम राष्ट्र मंडल तथा उसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक सदस्य देशों के साहित्य से परिचित हुए लेकिन इसके अलावा सीधे संपर्क के कारण विश्व की अनेक भाषाओं से सीधे अनुवाद भी शुरु हुआ । प्रो.जी.गोपीनाथन कहते हैं "सन् 1875 से 1975 तक विदेशी भाषाओं से अनूदित साहित्य की जो सूची (आत्माराम सेठी : 1981) तैयार की गई है उसके अनुसार करीब एक हजार रचनाओं का अनुवाद विदेशी भाषाओं से हिन्दी में हुआ हैं। इनमें सबसे अधिक रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी से हुआ है, जिनमें 25 कविता, 24 नाटक/एकांकी, 346 उपन्यास, समालोचना 6 और अन्य 38 रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । अंग्रेजी भाषा के बाद इस संदर्भ में दूसरे स्थान पर रूसी भाषा आती है । रूसी भाषा से 2 कविता, 22 नाटक, 212 उपन्यास और 19 विविध रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । तीसरे स्थान पर फ्रेंच भाषा है जिससे काव्यानुवाद नहींवत्, 26 नाटक, 105 उपन्यास और 4 अन्य ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । जर्मन भाषा चौथे स्थान पर है जिससे 1 काव्य, 3 नाटक, 24 उपन्यास और 4 विविध ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । अन्य यूरोपीय भाषाओं में इटालियन से 8, नॉरविजियन से 12, डैनिश से 7, चैक से 4, स्पेनिश से 4, ग्रीक से 3, रोमानियम से 3, लैटिन से 3, सर्बोक्रोशन से 3, स्वीडिश से 3, पोलिश से 2, डच से 1, हंगेरियन से 1 और ऑस्ट्रेलियन से 1 ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । एशियाई भाषाओं में पश्तो तथा फारसी से 27, अरबी से 20, चीनी से 5, ताजिक से 5, जापानी से 2, सिंहली से 2 तथा मंगोलिन और नेपाली से एक-एक ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद हुआ । अनूदित कृतियों की विषय वस्तु के संदर्भ में अंग्रेजी से शेक्सपीयर, फ्रेंच से मोलियर, ज़ोला, मोपासा और ड्यूमा, जर्मन के गेटे, रूसी के टॉल्सटॉय, चेखव, दोस्तोवस्की, चेक के कारल चापेक, डेनिश के एण्डर्सन, पोलिश के सेंकेविच, यूगोस्लाविया के आंद्रिय, स्पेन के सर्वन्ट्स, इटली के आलबर्तो मोराविया, ग्रीक से सोफ़ॉक्लीस, फ़ारसी से उमर खय्याम, शेख़ सादी, चीनी से माओ-त्से-तुंग, अरबी से ख़लील जिब्रान आदि हिन्दी में सर्वाधिक अनूदित और जनप्रिय हुए ।"[1]

1. अनुवाद अंक 102-103, में प्रकाशित प्रो.जी. गोपीनाथन का लेख 'विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद', पृ.294

भारतीय विषयों को लेकर रचित कई महान रचनाएँ यथा-एडविन आर्नाल्ड का बुद्धचरित (अंग्रेजी) हर्मन हेस सिद्धार्थ (जर्मन), वानलिंबर्ग ब्रोवर कृत अकबर (डच) आदि विशेष स्थान रखती हैं । अज्ञेय, माचवे आदि के अनुवादों में जापानी हाइकू हिन्दी काव्य पर अपना स्थाई प्रभाव जमा गया है। इन अनुवादों ने एक ओर जहाँ नए विचार, नए साहित्य-रूप एवं शिल्प दिए, वहाँ हिन्दी की रचनाओं के लिए उत्तम नमूने भी इनसे प्राप्त हुए ।

डॉ. सुधेश का मानना है कि "हिन्दी भाषा में पहले अंग्रेजी की फुटकर कविताएँ अनूदित हुई और वे भी उन कवियों की जो इण्टर, बी.ए., एम.ए. के पाठ्यक्रमों के अंतर्गत रखी गई थीं । इन कवियों में वर्ड्स वर्थ, टेनीसन, कीट्स, शैली, लॉंगफैलो, बायरन, टॉमस ग्रे, गोल्ड स्मिथ, काउपर आदि को समाहित किया गया था । अंग्रेजी के रोमेन्टिक कवियों को पाठ्यक्रम में विशेष स्थान प्राप्त था, यद्यपि चॉसर, मिल्टन, शेक्सपीयर आदि भी पढ़े-पढ़ाए जाते थे । रोमेन्टिक कवियों की भारत में लोकप्रियता के कारण हिन्दी भाषा में रोमेन्टिसीज्म (स्वच्छन्दतावाद) का विकास हुआ ।"[1]

अंग्रेजी की फुटकर कविताओं के हिन्दी में अनुवाद सबसे पहले श्रीनिवास दास ने किए । उनके उपन्यास 'परीक्षागुरु' (जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है) में शेक्सपियर, काउपर, बायरन की कविताओं की पंक्तियाँ अनूदित रूप में सम्मिलित हैं । तत्पश्चात् अंग्रेजी की फुटकर कविताओं के अनुवाद का क्रम विकसित होता हुआ स्वतंत्र कृतियों के अनुवाद तक पहुँचा, यद्यपि फुटकर कविताओं के अनुवाद बाद में भी होते रहे । श्रीधर पाठक, लोचन प्रसाद पाण्डेय कामताप्रसाद गुरु, विद्या रसिक, महेश चन्द्र, छंगालाल मिश्र, बच्चन पाण्डेय, रघुनाथ प्रसाद कपूर, हरिवंशराय बच्चन, रामचन्द्र शुक्ल आदि ख्याति प्राप्त साहित्यकारों ने अंग्रेजी से हिन्दी में खूब अनुवाद किए । अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं का प्रचुर साहित्य हिन्दी भाषा में अनूदित हो चुका है लेकिन विदेशी कविता की तुलना में विदेशी गल्प साहित्य का अनुवाद अधिक हुआ है । विदेशी भाषाओं में भी अंग्रेजी से हिन्दी भाषा में सबसे अधिक अनुवाद हुए । अंग्रेजी फुटकर कविताओं के अनुवाद की लम्बी परम्परा हिन्दी भाषा में मिलती है, और ये सारे अनुवाद

---

1. अनुवाद अंक 96-97, में प्रकाशित डॉ. सुधेश का लेख 'अंग्रेजी काव्य के हिन्दी अनुवादक', पृ.29

अनेक संग्रहों में भी संग्रहित हुए । परन्तु अधिकांश अनूदित कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं । अंग्रेजी की स्वतंत्र कविताओं के अनुवाद अनुपात की दृष्टि से कम हैं, गल्प साहित्य में अनुवाद बहुत बड़ी संख्या में हैं ।

6.2.5 फ़ारसी और उर्दू साहित्य से अनुवाद :

भारत में मुगलों के कई सदियों के शासनकाल में फारसी दरबारी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही । यह स्वाभाविक ही है कि जनता शासन की भाषा की ओर आकर्षित हो जाती है, क्योंकि शासन की भाषा के माध्यम से दानापानी का जुगाड़ करने में सहूलियत रहती है । मुगलों के शासनकाल में फ़ारसी ने भारत की जनता को अपने शिकंजे में कसा और भारत में फ़ारसी भाषा का प्रभुत्व मुसलमानी शासन के समाप्तप्राय होने तक रहा । डॉ. रामगोपालसिंह का कहना है कि "हिन्दी और फ़ारसी के मिश्रण से 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' वैसे तो चौदहवीं सदी से ही उत्तर भारत में फौजी छावनियों में ढलनी शुरु हो गई थी लेकिन फौजी छावनियों के दक्षिण भारत की ओर प्रयाण करने पर यह ढलती जबान उनके साथ दक्षिण भारत में जा पहुँची और बरार, बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर आदि रियासतों में शासन की भाषा के रूप में लगभग चार सौ वर्षों तक अपना अस्तित्व बनाती रही । बाद में वली के प्रयास से दिल्ली के शायराना परिवेश में अपनी विशिष्ट अदा के बलबूते पर लगभग ई.स.1750 के आसपास उर्दू के रूप में प्रतिष्ठित हो गई । इस तरह फ़ारसी का हिन्दीकरण उर्दू के रूप में हुआ ।"[1] डॉ. नगेन्द्र के अनुसार सन 1824 में प्रथम वर्ग के श्री एच.एच.विल्सन प्रभुति के प्रयत्न से कलकत्ता के मदरसे और बनारस के संस्कृत कॉलेज का पुनर्गठन किया गया और कलकत्ता एजूकेशन प्रेस की स्थापना हुई । इस प्रेस से संस्कृत और अरबी, फ़ारसी की पुस्तकें छपने लगीं । दूसरी ओर राजा राममोहन राय ने यह मत व्यक्त किया कि व्याकरण की बारीकियों और वेदान्त मीमांसा तथा न्याय को कंठस्थ करने में नवयुवकों के बारह वर्ष नष्ट करना उचित नहीं है । इससे वे समाज के अच्छे सदस्य नहीं बन सकते । राजा राममोहन राय की प्रेरणा से फ़ारसी भाषा में 'जाम-ए-जहाँ-नुम' और 'मीरत-उल-अख़बार' नामक दो पत्र निकले । राजा राममोहन राय को अरबी-फ़ारसी का गहरा ज्ञान था । अरबी-

1. हिन्दी भाषा पर फ़ारसी और उर्दू का प्रभाव, डॉ. राम गोपाल सिंह की भूमिका से पृ.7

भाषा में अनुवाद के माध्यम से ही वे अफ़लातून, अस्तु, प्लॉटीनस आदि प्राचीन यूनानी विचारकों से परिचित हुए ।"[1]

मुहम्मद इलियास 'नवैद' गुन्नौरी का कहना है कि जब-जब दो संस्कृतियाँ या सभ्यताएँ टकराई हैं, अनुवादक दोनों के मध्य सहायक सिद्ध हुआ है । मुसलमानों के आगमन के पश्चात् अरबी संस्कृति से टकराव निश्चित था । मुसलमान भारत में बस गए और दोनों जातियाँ एक दूसरे को समझने लगीं । अरबी भाषा के बाद फ़ारसी भाषा का भारत में बोलबाला होने लगा । मुगलकाल में फ़ारसी भाषा उन्नति के शिखर पर पहुँचकर राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित हो गई । फ़ारसी से हिन्दी एवं संस्कृत में तथा हिन्दी और संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद होने लगे । इन्हीं अनुवादों और दोनों संस्कृतियों के टकराव से एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ जो बोलचाल की भाषा कहलाई और आगे चलकर उर्दू भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई । आरंभिक उर्दू तथा हिन्दी में कोई विशेष अन्तर नहीं था ।[2]

उर्दू एक ऐसी भारतीय भाषा है कि जिसकी लिपि अरबी अथवा फ़ारसी है । इसका शब्दकोश भी अरबी-फ़ारसी भाषाओं पर निर्भर करता है । उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए यदि केवल लिपि ही बदल दी जाए तो भी पाठक समझ सकता है । उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए अनुवादक को उर्दू के साथ-साथ अरबी-फ़ारसी शब्दावली का ज्ञान आवश्यक है। उर्दू में अरबी-फ़ारसी शब्दावली के प्रयोग के कारण बहुधा ऐसे शब्द भी सामने आते हैं, जो अरबी-फ़ारसी से थोड़े-बहुत उच्चारण के इधर-उधर होने से अर्थ खो बैठते हैं । यथा - क़ाज अर्थात् काज-बटनवाला काज न कि कार्य । बसर अर्थात् बिताना । बीतना की जगह बशर करें तो उसका अर्थ बदलकर मनुष्य हो जाएगा, क़मर अर्थात् चन्द्रमा की जगह कमर करेंगे तो शरीर का एक हिस्सा हो जाएगा । अतः उच्चारण की दृष्टि से भी इन शब्दों में बहुत फर्क़ है ।

हिन्दी साहित्य में उर्दू से अनुवाद बहुत नहीं हो पाए हैं । फिर भी प्रेमचन्द जैसे मूल उर्दू साहित्यकारों ने उर्दू से हिन्दी में अनुवाद किए हैं । उन्होंने 1918 के पूर्व उर्दू में कई उपन्यासों की रचना की थी जिनमें से 'प्रेमा अर्थात् दो सखियों का विवाह' (हमख़ुर्भाँ व हमसवाब का रूपान्तर) 1907 में

1. हिन्दी भाषा पर फ़ारसी और उर्दू का प्रभाव, डॉ. राम गोपाल सिंह की भूमिका से पृ.7
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ.नगेन्द्र, पृ.434, 436, 438

हिन्दी में प्रकाशित हुआ । 'जलवए ईसार' का रूपान्तर 'वरदान' 1921 में प्रकाशित हुआ तथा 'हमखुर्मा व हमसवाब' के पूर्व प्रकाशित हिन्दी-रूपान्तर 'प्रेमा अर्थात् दो सखियों क़ा विवाह' को परिष्कृत करके उन्होंने 'प्रतिज्ञा' (1929) शीर्षक से सर्वथा नए रूप में प्रकाशित करवाया था । एक उल्लेखनीय बात यह है कि आरंभ में प्रेमचन्द अपने उपन्यास पहले उर्दू में लिखते थे और फिर स्वयं उनका हिन्दी में रूपान्तर करते थे । 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रय' और रंगभूमि क्रमशः 'बाजारे हुस्न', 'गोराए आफ़िमत' और 'चौगाने हस्ती' नाम से उर्दू में लिखे गए थे । लेकिन पहले ये हिन्दी में ही प्रकाशित हुए ।[1] उनके अलावा भी अनेक साहित्यकारों ने उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी भाषा की श्रीवृद्धि की । हालाँकि उर्दू मूलतः खड़ी बोली से विकसित शैली ही रही तो भी दक्खिन से उत्तर लौटने के बाद उसने फ़ारसी-अरबी से घनिष्ठता बना ली । तत्पश्चात हिन्दी भाषा को उसने अपनी शैली प्रदान करके हिन्दी भाषा को और अधिक समृद्ध बनाया ।

6.3 विविध वाद और अनुवाद :

राष्ट्रीय जागरणकाल या द्विवेदी युग के साहित्य को विकास के संदर्भ में दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है । पहला काव्य परम्परा और दूसरा गद्य परम्परा । काव्य परम्परा को चार प्रमुख परम्पराओं में बाँटा जा सकता है । इन परम्पराओं ने हिन्दी साहित्य को नई दिशाएँ दीं ।

सुधारवाद और अनुवाद :

सन् 1850 से 1918 तक समाज में धर्म, नीति, अर्थ, साहित्य आदि विषयों को लेकर जो सुधारवादी लहर चली थी, उसका प्रभाव उस युग के हिन्दी साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । सर्वांगीण सुधार की इसी बलवती प्रेरणा को युगीन साहित्य की केन्द्रीय प्रेरणा माना जा सकता है । इस युग में देश राष्ट्रीय संकट से जूझने के लिए एक ओर तो अपनी दुर्बलताओं को दूर करने की चेष्टा कर रहा था तथा दूसरी ओर संगठित होकर शक्ति संचय की दिशा में भी प्रयत्नशील था । सुधारवादी दृष्टि इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में प्रवृत्त थी । इसी आधारभूत दृष्टि के कारण इस युग की कविता को 'सुधारवादी कविता' के नाम से अभिहित किया जाता है ।

---

1. अनुवाद अंक 43, अप्रैल-जून 1985 (वर्ष-20, अंक-2), कला तथा तकनीक विशेषांक में प्रकाशित मुहम्मद इलियास 'नवैद' गुन्नोरी का लेख 'उर्दू से हिन्दी में अनुवाद की समस्याएँ, 'पृ.60

इस काल में भारत में बाह्य आचारों और साधनों ने धर्म व समाज दोनों को ही ढँक लिया था । छूआछूत, पाखंड और रूढ़िवादी विचारों ने समाज को जकड़ लिया था । पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से नया ज्ञान, आदर्श और नए संदेश भारत में आने लगे । ऐसी स्थिति में स्वामी दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द ने धर्म और दर्शन में भारतीय ज्ञान को सर्वोपरी प्रमाणित किया । स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश में सभी धर्मों के गुण-दोषों का विवेचन करके वैदिक धर्म को श्रेष्ठ और वैज्ञानिक घोषित किया । उन्होंने आर्य समाज की स्थापना करके उत्तरी भारत में समाज-सुधार और हिन्दी प्रचार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया । इससे हिन्दी में खंडन-मंडन-मूलक उपदेश-साहित्य की रचना हुई । अतः हिन्दी के पठन-पाठन की ओर जन साधारण में रूचि बढ़ी । अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय प्राचीन साहित्य और ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की । इससे भारत के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, साहित्य आदि के अनुशीलन के प्रति जनमानस की रूचि बढ़ गई, जिससे हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण सहायता मिली ।[1]

संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का प्रभाव हिन्दी साहित्य को नई दिशाओं के अन्वेषण में प्रेरित करता रहा । उन्नीसवीं सदी के अंत में साहित्य को गोष्ठि-साहित्य की सीमा से बाहर लाकर जनसाधारण की भाषा बनाने एक आन्दोलन चल पड़ा था । पहले तो संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं के साहित्यिक ग्रंथों का अनुवाद करके हिन्दी के शब्द-भंडार को समृद्ध किया गया ।[2]

हिन्दी साहित्य में धीरे-धीरे कविता के लिए नए आदर्शों की खोज होने लगी । कुछ लोग प्राचीन संस्कृत साहित्य को आदर्श रखना चाहते थे, परन्तु कुछ लोग पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण करने के समर्थक थे, कुछ अधिक विचारवान लोगों ने मध्यम मार्ग अपनाया । श्रीधर पाठक ने कालिदास के 'ऋतुसंहार', गोल्डस्मिथ की 'ट्रावेलर', 'हरमिट' और 'डेजर्टेड विलेज' आदि कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'दुर्लभ बंधु', 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'रत्नावली', 'पाखंड विडम्बना', 'विद्या सुन्दर', 'कर्पूर मंजरी' आदि अनूदित कृतियाँ हैं । सुधारवादी कविता के पश्चात् हिन्दी भाषा में छायावाद का प्रभाव बढ़ने लगा था ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.365
2. वही, पृ.366

6.3.1 छायावाद और अनुवाद :

हिन्दी साहित्य के आलोचकों में छायावाद की अवधारणा के विषय में पर्याप्त मतमतान्तर देखने मिलता है । डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार "छायावादी युग में विदेशी शासन का दमन-चक्र जोरों पर था । उस युग में मानव मन का दमित और कुंठित होना स्वाभाविक ही था । ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति के नए माध्यमों की खोज आवश्यक थी । इसीलिए 'कामायनी' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसे काव्य प्राचीन कथानकों को लेकर लिखे गए ।

हिन्दी साहित्य में छायावाद का आरंभ द्विवेदी-युग में ही हो गया था । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार छायावाद का आरंभ सन् 1918 और अंत 1938 माना जाता है । इन बीस सालों में अत्यंत विपुल काव्य-राशि का निर्माण हुआ । रचना परिमाण की दृष्टि से यह काल अत्यंत समृद्ध है । प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य से इस युग की साहित्य सम्पदा को बढ़ाया है । छायावाद की स्वच्छन्दतावाद के नाम से भी अभिहित किया जाता है ।

'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का प्रयोग शुक्लजी ने 'रोमेंटिसिज़्म' के अर्थ में किया है । विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से 'छायावाद' की परिभाषाएं दी हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि पुराने ईसाई संतों का छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी रचनाएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं । जबकि डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का कहना है कि "छायावाद अन्तर्मुखी मानव-मन की भावावेगमयी अभिव्यक्ति है जिसमें असंतोष, पीड़ा, विद्रोह, स्वातंत्र्यलालसा, अतीत-गौरव का गायन, भविष्य निष्ठा और रहस्यानुभूति आदि प्रवृत्तियों की प्रधानता रहती है ।"[1]

छायावादी युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है । भारतीय जनता सदियों से गुलामी सहन करते-करते आत्मकेन्द्रित होती हुई रूढ़िग्रस्त हो गई थी । राजकीय गुलामी के साथ-साथ सांस्कृतिक आक्रमण के कारण भारत में पुनर्जागरण का व्यापक आन्दोलन शुरु हुआ । इस आन्दोलन के जन्मदाता राजा राममोहनराय थे । इनके अलावा स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.392

परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गोपाल कृष्ण गोखले, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि अनेक नेता इसी विराट आन्दोलन के कर्मी थे । राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण के कारण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, साहित्य आदि की रचना होने लगी । इस युग के प्रायः सभी साहित्यकारों ने देश के अतीत-गौरव के प्रति अटूट श्रद्धा तो व्यक्त की ही है, साथ ही उनका यह दृढ़ विश्वास भी था कि शीघ्र ही देश पराधीनता और अत्याचार के दमन-चक्र से मुक्त होगा और फिर से एक नई विराट और भव्य सामाजिक व्यवस्था का उदय होगा ।

इस युग के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिसमें से हरिवंशराय बच्चन, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि के नाम अनुवाद के साथ जुड़े हुए हैं । महाप्राण 'निराला' ने बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी, ब्रज और अवधी भाषा की सुविख्यात कृतियों का सफल अनुवाद किया है । बंगला से बंकिम कृत उपन्यास - 'आनन्द मठ', 'कृपाल कुंडला', 'चन्द्रशेखर', 'दुर्गेशनंदिनी', 'कृष्णकान्त का बिल', 'युगांगुलीय', 'रजनी देवी', 'चौधरानी' आदि, टैगोर कृत 'रथयात्रा' (नाटिका), 'गोविन्ददास', राजयोग, संस्कृत से 'वात्सायन कामसूत्र', अंग्रेजी से 'परिव्राजक' आदि, स्फुट रूपान्तरों में 'तट पर' (रवीन्द्र-विजयनी) 'ज्येष्ठ' (रवीन्द्रनाथ), 'वैशाख', 'क्यों हँसती हो', 'कहाँ देश है' (रवीन्द्रनाथ), 'निरूद्देश्य यात्रा', 'प्रिय से', 'जीवन देवता', 'क्षमा प्रार्थना' आदि उल्लेखनीय हैं ।[1] हरिवंशराय बच्चन ने उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद किया है । मोटे तौर पर देखें तो हरिवंशराय बच्चन ने खैयाम की मधुशाला के अलावा शेक्सपियर के नाटक ('मैकबेथ' और 'ओथेलो'), चौंसठ रूसी कविताओं, संस्कृत से भगवतगीता का अवधी भाषा में नेहरू राजनीतिक जीवन-चरित्र के अनुवाद तो किए ही साथ ही विदेश मंत्रालय के कार्य से संबंधित अनुवाद. कार्य भी किया, इनके अलावा बलदेव प्रसाद मिश्र, केशव प्रसाद गुप्त, गिरधर शर्मा, रघुवंशलाल गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत आदि ने छायावादी अनेक रचनाएँ अनूदित की हैं ।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध, पृ.54
2. अनुवाद अंक 96-97, जुलाई-दिसम्बर 1998 में प्रकाशित विश्वनाथ मिश्र का लेख 'डॉ. हरिवंशराय बच्चन' पृ.187

इस प्रकार छायावादी साहित्यकारों ने बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत आदि से प्रचुरमात्रा में अनुवाद किया है जिससे हिन्दी साहित्य को नई दिशाएँ व नए आयाम प्राप्त हुए हैं । छायावादकाल के साहित्यकारों ने अनुवाद का अद्भुत कार्य करके हिन्दी भाषा को एक नया आयाम तो दिया ही साथ ही हिन्दी साहित्य की समृद्धि और अधिक बढ़ी ।

6.3.2 प्रगतिवाद और अनुवाद :

तत्त्वज्ञान के संदर्भ में जिसे साम्यवाद कहते हैं, अनुभूति के संदर्भ में वही प्रगतिवाद है । लेकिन प्रगतिवाद साम्यवाद का पर्याय नहीं है, परन्तु उसकी प्रेरणा से निर्मित वह गतिशील सामाजिक चेतना है जो शोषण और अत्याचार के बल पर सामान्य व्यक्ति की प्रगति में प्रतिरोध पैदा करनेवाली पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह करती है और एक समतामूलक, विकसनशील सामाजिक व्यवस्था में सुदृढ़ विश्वास रखती है ।

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी चिन्तन से प्रेरित समाजोन्मुख साहित्य है, जो पूँजीवादी शोषण और अन्याय के विरूद्ध विद्रोह और क्रांति कर समाज की स्थापना में विश्वास रखता है ।[1]

प्रगतिवाद सन् 1936 से शुरु हुआ । प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नया दृष्टिकोण लेकर आया । यह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य मानता है । प्रगतिवाद ने सौंदर्य को नए दृष्टिकोण से देखा । वह वर्तमान जन-जीवन में सौंदर्य को खोजता है । प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी काव्यधारा के विकास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा । उसने काव्य को व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकालकर जन-जीवन के बीच प्रवाहित कर दिया ।[2]

प्रगतिवाद में धर्म, भाग्य और ईश्वर के प्रति अनास्था व्यक्त हुई है । यह वाद वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध है । प्रगतिवादी कविता में नारी की स्वतंत्रता की वकालत भी की गई है । पूँजीवाद की समर्थक सरकार पर प्रगतिवादी कवियों ने तीव्र व्यंग्य कसे हैं ।

प्रगतिवाद की रचनाओं में प्रतीक, बिम्ब, शब्द, मुहावरे आदि सभी जन-जीवन के बीच से लिए हैं । अतः हिन्दी भाषा का जीवन्त रूप उभरकर

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.425
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.623

सामने आया । परन्तु इन रचनाओं की संकल्पना पाश्चात्य संकल्पनाओं की ही एक प्रति-छबि है । पाश्चात्य तत्त्वचिंतकों के विचारों को हिन्दी साहित्य में ढाला गया है । इससे हिन्दी की रचना पर पाश्चात्य परंपरा, संस्कृति आदि का खूब प्रभाव पड़ा । कार्ल मार्क्स जैसे तत्त्वज्ञानी के विचारों का प्रगतिवाद की रचनाओं पर सीधा असर है । हिन्दी के अनेक जाने-माने साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में मार्क्सवादी दृष्टि को खुलकर न्याय दिया है । निराला, सुमित्रानन्दन पंत, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि इस प्रगतिवाद के साहित्यकारों में से है ।[1]

प्रगतिवाद के मुख्य साहित्यकारों में रामधारी सिंह दिनकर ने अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य को अनुपम भेंट दी हैं । दिनकर ने अनुवाद के रूप में जो कृतियाँ दी हैं उनमें "सीपी और शंख" व "आत्मा की आँखें" मुख्य हैं । उनकी अन्य कृतियों जैसे 'धूपछाँह', 'सामधेनी', 'कोयला और कवित्व', 'मृत्ति तिलक', 'चेतना की शिखा' आदि में उनके द्वारा अनूदित कविताएँ भी मिलती हैं । देवेश चन्द्र का कहना है कि 'आत्मा की आँखें' और 'सीपी और शंख' में डी.एच.लॉरेन्स की कविताओं को मिलाकर देखा जाए तो उन्होंने अकेले लॉरेन्स की 75 कविताओं का अनुवाद किया है । आश्चर्य यह है कि जिस लॉरेन्स ने दिनकर को इतना प्रभावित किया उसके नाम का उन्होंने 'शुद्ध कविता की खोज' नामक कृति में केवल एक ही बार उल्लेख किया है ।[2]

दिनकर ने पुर्तगाली, स्पैनिश, जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच, पोलिश, चीनी, मलयालम आदि अनेक भाषा के कवियों की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है । इस प्रकार दिनकर, केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि की रचनाओं, अनुवादों से प्रगतिवादी युग में हिन्दी साहित्य में तत्त्वज्ञान जैसे चिन्तन योग्य विषयों की सहज ही प्रविष्टी हो गई । जिससे हिन्दी साहित्य को विशाल क्षेत्र मिला ।

6.3.3 प्रयोगवाद और अनुवाद :

सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादकत्त्व में 'तार सप्तक' का प्रकाशन

---

1. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा के अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध से, पृ.59
2. अनुवाद अंक 96-97, जुलाई-दिसम्बर 1998 में प्रकाशित देवेश चन्द्र का लेख 'रामधारी सिंह दिनकर' पृ.198

हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक घटना थी । इसमें नेमिचन्द्र जैन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय इन सात कवितों की रचनाएँ संकलित हैं । 'प्रयोग' की जिस प्रवृत्ति का विकास 'तार सप्तक' से हुआ था आगे चलकर वह प्रवृत्ति दो रूपों में प्रकट हुई । एक ने अनुभूति और अभिव्यक्ति के नए रूपों की खोज को कवि-कर्म का आवश्यक अंग मानते हुए भी 'प्रयोग' को साध्य न समझकर साधन-रूप में स्वीकार किया । प्रयोग की वृत्ति का दूसरा रूप अतिवादी था । उसका मुख्य लक्ष्य वाक्य रचना, वर्तनी, बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों, विराम चिह्नों और उपमानों के विलक्षण प्रयोगों के द्वारा संस्कारी पाठकों को चौकाना और उनकी मानसिकता को झटका देना था ।[1]

सन् 1943 में अज्ञेय के नेतृत्त्व में हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक नए आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे अब तक विभिन्न नाम - प्रयोगवाद, नई कविता आदि दिए गए । कुछ विद्वानों ने इसे 'व्यक्तिपरक यथार्थवाद' भी कहा है और अपनी उच्चारण सुविधा के कारण इसे 'अतियथार्थवाद' नाम दे दिया ।[2]

आधुनिक हिन्दी साहित्य का यह प्रयोगवाद युरोप के अनेक काव्य सम्प्रदायों एवं गद्य सिद्धान्तों से प्रेरित है । प्रयोगवादी साहित्यकार यथार्थवादी है । प्रयोगवाद ने बड़ी-बड़ी घटनाओं, बड़े-बड़े संघर्षों, बड़े-बड़े व्यक्तियों या समुदायों, बड़े-बड़े जीवन-संघर्षों के विशाल फ़लक पर इतिवृतात्मक काव्य का निर्माण नहीं किया, उसने व्यक्ति के अंत: संघर्षों, क्षणों की अनुभूतियों और सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटी से छोटी संवेदनाओं और मन की विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी-छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएँ लिखीं ।

प्रयोगवाद में हिन्दी भाषा साहित्य में अनेक साहित्यकारों ने अनुवाद के माध्यम से हिन्दी के साहित्य का अचल विकास करवाया है । भदन्त आनन्द कौसल्यायन । डॉ. रघुवीर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव आदि लोकप्रसिद्ध साहित्यकारों ने भरपूर अनुवाद किया है । डॉ. रघुवीर ने पारिभाषिक शब्दावली की रचना करके लाखों शब्द बनाए । उन्होंने तकनीकी, रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, औषधि विज्ञान, मनोविज्ञान, विधि, इंजीनियरिंग आदि विषयों के लिए लाखों शब्द बनाए । इन शब्दों में अधिकांशत: शब्द मूल संस्कृत से धातु लेकर

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.440
2. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, पृ.61

बनाए गए हैं । डॉ. रघुवीर द्वारा संपादित 'बृहत अंग्रेजी-हिन्दी-शब्दकोश' के संपादन में घोर प्रयत्न और घोर परिश्रम किया ।

डॉ. रघुवीर के अलावा अनेक साहित्यकारों ने अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य को ऊँचा उठाया है । मोहन राकेश ने चार अंग्रेजी उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया है । इन उपन्यासों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों 'शाकुन्तल' और 'मृच्छकटिक' का भी मोहन राकेश ने अनुवाद किया । अनुवादकों की सूची में एक और विशिष्ट नाम है - भदन्त आनन्द कौशल्यायन । वे मूलतः अनुवादक थे और उन्होंने अनेक बौद्ध ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया । 'जातक' के छह खंडों में अनुवाद किए । 'अंगुत्तर निकाय', गौड़पदाचार्य कृत 'आगमशास्त्र', डॉ. आम्बेडकर कृत 'भगवान् बुद्ध और उनका धर्म' आदि पुस्तकों का भी उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया । भदन्त आनंद ने 'पालि-हिन्दी कोश' भी तैयार किया । राहुल सांकृत्यायन और भदन्त आनंद कौसल्यायन ने बौद्ध ग्रंथों के जो अनुवाद प्रस्तुत किए उनमें उनके अपने-अपने दृष्टिकोणों के कारण मूल अन्तर है ।[1]

इस प्रकार प्रयोगवाद हिन्दी साहित्य के लिए नए बिम्ब, प्रतीक, प्रकृति का सौंदर्य, अंग्रेजी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में ढालना आदि अनेक प्रवृत्ति लाया जिससे हिन्दी साहित्य की जड़ें और अधिक गहरी उतरीं और हिन्दी साहित्य अपने विकासक्रम में आगे बढ़ा ।

अतः हिन्दी का गद्य साहित्य ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के लिए बनी नीतियों तथा फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से अपना विकास साधता रहा । लल्लूलाल, गिल क्राइस्ट, सदल मिश्र आदि भाषा मुंशी तथा प्रधानाध्यापक (गिलक्राइस्ट) जैसे लोगों ने जनप्रचलित भाषा के रूप में हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी भाषा पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया । कंपनी के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने हेतु विदेशी भाषा के साहित्यकारों के हिन्दी अनुवाद का प्रचलन बढ़ा । अंग्रेजी के अनेक कवि और उनकी रचनाओं का खड़ी बोली में अनुवाद होने लगा । परतंत्र भारत में इस समय हिन्दी का महत्त्व बहुत बढ़ गया था । फोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत ही स्पष्ट नीति निर्धारण और तदनुरुप व्याकरण कोश आदि बनाने का दायित्व गिल क्राइस्ट का था । उन्होंने

1. अनुवाद अंक 96-97, जुलाई-दिसम्बर 1998 में प्रकाशित देवेश चन्द्र का लेख 'भदन्त आनन्द कौसल्यायन' पृ.222

'ए डिक्शनरी : इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी', 'ए ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज', 'दि हिन्दी स्टोरी टैलर', 'डायलॉग्स इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी', 'दि हिन्दी मैन्युअल' आदि पुस्तकें लिखीं ।

जिस समय फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से हिन्दी भाषा में लेखन कार्य को अधिक बढ़ावा दिया जा रहा था तब ईसाई मिशनरी कलकत्ता के आसपास बाइबिल के हिन्दी गद्य में अनुवाद करवाने के कार्य में सक्रिय थे। फोर्ट विलियम कॉलेज की प्रशासकीय भाषा नीति के अनुकूल खड़ी बोली, ब्रजभाषा के पहले ही नागरी तथा रोमन अक्षरों में उर्दू-हिन्दुस्तानी का सिलसिला शुरु हुआ । फ़ोर्ट विलियम कॉलेज ने हिन्दुस्तानी, बंगला, फ़ारसी, अरबी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे, अनूदित किए और प्रकाशित भी किए । इस प्रकार हिन्दी साहित्य धीरे-धीरे अपना व्यवस्थित विकास पथ पकड़ता जा रहा था । हिन्दी काव्य पर तो अंग्रेजी, बंगला आदि का तो प्रभाव था ही परन्तु हिन्दी साहित्य को गद्य विधा भी अनुवाद के माध्यम से निखर रही थी ।

छायावाद से हिन्दी साहित्य के गद्य ने अपना सर्वांगीण विकास आरंभ किया । सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों का नेतृत्व करनेवाली संस्थाओं की प्रेरणा से देश को नई दिशा दिखानेवाले समृद्ध-साहित्य का विकास होने लगा। नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; दक्षिणी भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास; हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद आदि हिन्दी की शुभाकांक्षी संस्थाओं ने 50-60 वर्षों के अल्प समय में ही अनूदित, मौलिक आदि साहित्य के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के भंडार को विषय, विचार, भाव, भाषा, शैली आदि की दृष्टि से समृद्ध किया । इन्हीं शुभाकांक्षी संस्थाओं और साहित्यकारों के स्वतंत्र प्रयासों से हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का उच्चतम पद मिला, अदालतों, राज्य कार्यों, विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम आदि में स्थान मिला । प्रांतीय भाषाओं से हिन्दी में खूब अनुवाद होने लगे । प्रांतीय भाषाओं के ललित साहित्य का हिन्दी में खूब अनुवाद होने लगा ।

प्रांतीय भाषाओं से हिन्दी में जितने भी अनुवाद हुए उनमें सबसे अधिक अनुवाद बंगला से हिन्दी में हुए हैं । भारत में मुद्रण एवं पत्रकारिता के आरंभ होने के समय से ही बंगला से हिन्दी में अनुवाद होते आ रहे हैं ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर, काजी नजरूल इस्लाम, बंकिमचन्द्र, माइकल मधुसूदन दत्त आदि की विश्व प्रसिद्ध रचनाओं को हिन्दी में उतार कर हिन्दी भाषा को नई दिशाएँ मिलीं । 1960 तक बंगाली लेखक हिन्दी पाठकों में अपना विशेष स्थान बना चुके थे ।

बंगला भाषा के बाद सर्वाधिक जिस प्रांतीय भाषा से हिन्दी में अनुवाद हुए वह है गुजराती भाषा । गुजराती साहित्य से हिन्दी में सबसे अधिक गुजराती प्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशी की रचनाओं का अनुवाद हुआ है । हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास की रचना को मुंशी के उपन्यासों से ही प्रेरणा मिली है । इनके अलावा काका कालेलकर, महादेवभाई देसाई, इन्द्र वसावड़ा आदि ने गुजराती और हिन्दी दोनों में ही लिखा है । इससे गुजराती शैली की विशेषताएँ हिन्दी में आई ।

दक्षिणी भाषाओं से हिन्दी में बहुत कम अनुवाद हुआ है । राष्ट्रीय भाषा हिन्दी प्रचार सभा की मुख्य पत्रिका 'राष्ट्रभारती' में प्रांतीय भाषाओं के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । इनमें अधिकांशत: तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा की कहानियाँ अनूदित हुई हैं । स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में गांधीजी के प्रयत्नों से तेलुगुभाषियों ने भी हिन्दी भाषा सीखी और वे इस सदी के प्रथम दशक से हिन्दी से अपनी मातृभाषा में अनुवाद करने लगे । फिर धीरे-धीरे तेलुगु भाषी अपना प्रभुत्व हिन्दी भाषा पर जमाते गए और फिर स्वतंत्र रूप से हिन्दी में लिखने भी लगे । तत्पश्चात तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद होने लगे । तेलुगु के पश्तात दक्षिण भारत की प्राचीनतम भाषा तमिल से हिन्दी में अनुवाद का नंबर आता है । विश्व की प्राचीन भाषा तमिल में एक युग अनुवाद का भी रहा जब अनुवादकों को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था । अखिल भारतीय स्तर पर अनेक मान्यता प्राप्त कवि कन्नड़ भाषा में हैं । साहित्य अकादमी के भारतीय कविता (1953, 1954-55, 1958-59) के संग्रहों में कन्नड़ के सुविख्यात कवियों जैसे - कर्वेपु, बेन्द्रे, के.एस.नरसिंह स्वामी, गोपालकृष्णन अडिग, चेन्नवीर कणवि जयदेव तामि लिगाडे, बी.एच.श्रीधर, वी.के.गोकाक, रामचन्द्र शर्मा, पु.ति.नरसिंहाचार्य, जी.एस.शिवक्षद्रप्पा, दिनकर देसाई, गोविन्द पै आदि की कविताओं का हिन्दी अनुवाद हुआ है । मैसूर विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग से प्रकाशित 'आधुनिक कन्नड़ काव्य' कन्नड़ कविताओं के हिन्दी अनुवाद का उत्तम संग्रह है ।

पश्चिमी साहित्य ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है । हिन्दी भाषा में फ्रांसीसी, रूसी और अंग्रेजी साहित्य एक साथ अनूदित हुआ है । इसके अलावा इटालियन, डैनिश, लैटिन, सर्बोक्रोसन, हंगेरियन पोलिश, परतो, फ़ारसी, अरबी, चीनी, जापानी, ताजिक, मंगोलियन, नेपाली, डच, रोमानियम आदि भाषाओं से अनुवाद हुए हैं । शेक्सपियर, बायरन, काउपर, वर्ड्सवर्थ आदि ख्याति प्राप्त साहित्यकारों की रचनाओं का एकाधिक बार अनुवाद हुआ है । फारसी और उर्दू से सीमित संख्या में ही अनुवाद हुए हैं ।

इस प्रकार भारतीय भाषाओं से लेकर विश्व की अनेक भाषाओं से हिन्दी साहित्य ने काफी कुछ बटोरा है । विश्व की अनेक भाषाओं से भाषाशैली के अलावा विचार और भावों को भी हिन्दी भाषा, साहित्य ने अपने आप में समा लिया है । कालक्रम के अनुसार विविध वादों के माध्यम से भी हिन्दी साहित्य ने बहुत कुछ ग्रहण किया है । अनेक शब्द, शब्दों के विविध अर्थ प्रयोग, भाषा शैली आदि से हिन्दी साहित्य अपने विकास की चरम सीमा की ओर बढ़ता रहा है । और आज इस उच्चतम शिखर पर पहुँच सका है । छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि ने हिन्दी साहित्य में विभिन्न भावशैली, विचार प्रक्रिया को जन्म दिया । अत: आज हिन्दी साहित्य अत्यंत समृद्ध है । ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है ।